किसानों का संकट और प्रेमचंद के विचार

सुशील कुमार सिंह*

तुलसीदास ने आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व लिखा था 'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली।' इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि इस देश में किसानों की दशा लम्बे समय से दयनीय रही है। अंग्रेजी साम्राज्य के स्थापित हो जाने के बाद किसानों की दशा बद से बदतर होती गयी। किसानों पर लगाये जाने वाले सैकड़ों प्रकार के लगानों से उनकी जिन्दगी तबाह हो गयी। खासकर छोटी जोत वाले किसानों की दशा बहुत ही खराब हो गई, वे किसान दाने–दाने के लिए मोहाल हो गये थे, उनकी जोत का लगभग 80 प्रतिशत भाग लगान चुकाने में चला जाता था, जिनके चलते उनके परिवार को भरपेट भोजन तक भी नसीब नहीं हो पाता था।

प्रेमचंद ने किसानों की दीनहीन दशा को बहुत नजदीक से देखा था। कृषि प्रधान क्षेत्र में जन्मभूमि होने के कारण किसानों के दैनिक जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं से वाकिफ थे, इसलिए किसान जीवन के दुर्दशा के सवाल प्रेमचंद के विचारों के केन्द्र में थे। जिनकी सच्चाई को उन्होंने सहजता से साहित्य पटल पर रखा है।

भारत में अंग्रेजों की प्रमुख नीति थी देशी कामगारों एवं गरीबों का शोषण करना। किसानों का शोषण इनमें प्रमुख था और उनके शोषण में सामंत, जमींदार, तल्लुकेदार और पूँजीपति जैसी देशी ताकतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक तरफ जनता पुराने रूढिगत संस्कारों से तड़प रही थी, जो उन्हें बुरी तरह कसे हुए थे। प्रेमचंद ने स्पष्ट घोषणा की, 80 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण किसानों की आबादी वाले इस देश में, वे तब तक मुक्त नहीं हो सकते है, जब तक उन्हें साम्राज्यवादी गुलामी के साथ–साथ, उनके दलालों से मुक्ति न मिल जाये।

प्रेमचंद यह मानते थे कि इस देश की आजादी तब तक संभव नहीं जब तक देश के किसानों और मजदूरों का राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक शोषण और भेदभाव बन्द हो जायेगा। उन्होंने वर्ण, धर्म, जाति, सम्प्रदाय को इनके उत्थान में एक बड़ी बाधा माना। प्रेमचंद ने अपने लेखन के माध्यम से देश में दबे, कुचले लोगों की आवाज को अपने लेखन के माध्यम से उठायी, जिन्हें लेखकों ने निरीह एवं अप्रासंगिक समझकर उन्हें कम महत्व दिया था।

***शोधछात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी– 221005**

प्रेमचंद के यहाँ 'स्वराज्य' की स्पष्ट परिभाषा थी। वे मानते थे कि स्वराज्य का अर्थ है 'किसानों के लिए स्वराज्य'। वे कहते थे कि ''स्वराज किसानों की माँग है, उन्हें जिन्दा रखने के लिए आवश्यक है, अनिवार्य है।'' उनकी लेखनी चली, निर्बाध रूप से और केन्द्र में थे देश की रीढ़ माने जाने वाले भारतीय किसान। वे किसानों की मुक्ति चाहते थे, माध्यम चाहे कोई भी हो। वे मानते है कि अपनी स्वतन्त्रता के लिए तथा अपनी माँगों के लिए किसानों को एक होना पड़ेगा किसान एकता, सामंती उत्पीड़न और साम्राज्यवादी दमन के खिलाफ प्रारंभिक प्रतिरोध है। क्योंकि बिना संघर्ष किये यहाँ कुछ भी नहीं मिलने वाला है। उनकी किसान पक्षधरिता को भारत में ही नहीं बल्कि सोवियत लेखकों ने भी बहुत सम्मान की नजर से देखा। 'बेस्क्रोवनी' के शब्दों में ''भारतीय साहित्य में किसानों की सही जिन्दगी की जीती–जागती और बोलती हुई तस्वीरें देने वाले वे पहले लेखक हैं।''[1]

किसानों के यथार्थ जीवन को उद्घाटित करने में जितनी गम्भीरता प्रेमचंद के साहित्य में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते है, ''हर कोई जानता है कि प्रेमचंद ने समाज के सभी वर्गों की अपेक्षा किसानों के चित्रण में सबसे अधिक सफलता पाई है। वे हर तरफ के किसानों को पहचानते थे, उनके विभिन्न आर्थिक स्तर, उनकी विभिन्न सामाजिक समस्या। वे किसान जीवन के हर कोने से परिचित थे। जैसी उनकी जानकारी असाधारण थी वैसा ही किसानों से उनका स्नेह भी गहरा था। किसानों के सम्पर्क में आने वाली शोषण की जंगी मशीन के हर कल–पुर्जे से वे वाकिफ थे।''[2]

प्रेमचंद ने यह स्पष्ट किया है कि जमींदारों ने हमेशा से किसानों का सताया है, शोषित किया है। मगर उन्हें यह समझ नहीं है कि वे जिनके बल पर उनकी शानों–शौकत बनी हुयी है वह किसान ही है। जमींदारों को अब अंग्रेजों के शोषण के रवैयों को त्यागना होगा अन्यथा आने वाले समय में बहुत उथल–पुथल मचेगा। वे कहते हैं कि ''किसानों का जमींदारों पर जितना प्रभाव है, उतना और किसी का नहीं हो सकता। उन्हें स्वरक्षित जगहों पर भरोसा न करना चाहिए, क्योंकि साधारण कानून सभा में स्वरक्षित जगहों पर बराबर हमले होते रहेंगे और बहुत दिन तक इन हमलों को रोकना कठिन हो जायेगा, मगर अड़चन तो यही है कि हमारे जमींदारों और तल्लुकेदारों ने अपनी स्वार्थांधता और विलासिता के अभियान में पड़कर इस प्रभाव को खो दिया है और अब उनका मुँह नहीं है कि साधारण सभा में प्रवेश पाने के लिए, वह अपने असामियों पर भरोसा कर सकें। अगर हमारे जमींदार विचारशील होते और समझते कि वह जो चैन कर रहे हैं वह असामियों की बदौलत, और उन असामियों के प्रति उनका कुछ कर्त्तव्य भी है, तो असामी उनसे विद्रोह क्यों करते। अगर जमींदारों का बस चलता, तो असामियों की

दशा इससे भी गयी बीती होती। यह तो काउंसिलों के उद्योग का नतीजा है कि जमींदारों के हाथ एक हद तक बाँध दिये गये है और कृषकों को भी कुछ अधिकार मिल गये हैं। अगर भू–पतियों का आगे भी वही व्यवहार रहा, तो वास्तव में भविष्य उनके लिए अंधकारमय है।''[3]

प्रेमचंद ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा था कि ऐसा नहीं है कि केवल किसान ही पीड़ित है। अपितु जमींदार भी कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं। जमींदारों और काश्तकारों में अन्तर यही है कि काश्तकार मेहनत करके भी कर्जदार है, पर जमींदार केवल अपनी फिजूलखर्ची और विलासिता के कारण कर्जदार हैं। प्रेमचंद यह बताते है कि किसानों के ही तरह कर्जदार होकर भी वे किसानों पर तनिक भी सहानुभूति नहीं दिखाते हैं; ''प्रजा उनकी सीधी, बेजुबान, दुधारू गाय है। उनका काम केवल गाय का दूध दुह लेना है। गाय को भूसा, खली भी मिलती है या नहीं, इसकी उन्हें बिल्कुल चिंता नहीं होती। कितने ही तो अपने इलाके तक का दर्शन तक नहीं करते। मुख्तार उन्हें रूपये दे जाय, बस और उनका प्रजा के सुख–दुःख से प्रयोजन नहीं।''[4]

किसानों की सबसे दयनीय स्थिति तब होती है, जब वे कर्ज के बोझ से दब जाते हैं। यह कर्ज आज के समय में भी एक विकराल समस्या बन गयी है। आज लाखों किसानों ने आत्महत्यायें की हैं, जिसके मूल में कहीं न कहीं कर्ज ही है। यह समस्या प्रेमचंद के समय में भी गम्भीर थी। साम्राज्यवादी ताकतों ने इस कदर शोषण के हथियार धारदार बना लिये थे कि वे जब चाहे तब इस हथियारों से किसी किसान या मजदूर को रेत सकते थे। प्रेमचंद कर्ज की समस्या और किसानों की दयनीय स्थिति पर लिखते हैं कि ''कौन नहीं जानता कि भारत के किसान बुरी तरह कर्ज के नीचे दबे हुए हैं। उनका प्रायः सभी काम कर्ज से चलता है। बीज वह सूद पर लेते हैं और एक का डेढ़ अदा करते हैं। कपड़ा या तो वह बजार से उधार लेता हैं या पठानों से। बैल भी वह प्रायः फेरी करने वाले से ही उधार लेता है। शादी, गर्मी, तीर्थ–व्रत में तो अपने सम्मान–रक्षा के लिए उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। .....और गरीब किसान एक बार कर्ज लेकर उऋण नहीं हो सकता। सूद भी अदा नहीं कर पाता, मूल का तो कहना ही क्या?''[5]

मैग्सेसे सम्मान पा चुके के वरिष्ठ पत्रकार 'पी0 साईंनाथ' के अनुसार, पिछले बीस वर्षों में (वर्ष 1995 से 2013 तक) देशभर में करीब तीन लाख किसानों ने फसल के नुकसान और कर्ज से परेशान होकर आत्महत्या कर ली। कर्ज की समस्या पर सरकार का कोई सही निर्णय न होने के कारण आने वाले समय में यह स्थिति और विकराल होने जा रही है। आगे भविष्य में यह स्थिति इतनी भयावह होने होने जा रही है, जिस पर नियंत्रण असम्भव सा हो जायेगा।

ऋण एक अत्यन्त ही गम्भीर समस्या है। यह एक बार जहाँ घर कर जाती है वहाँ से जाने का नाम नहीं लेती। भारत के गरीब किसानों का जीवन ऋण के बोझ को चुकता करने में बीत जाता है। 10 जुलाई, 1933 में 'किसानों का कर्जा' नामक लेख में वह लिखते है कि ''आज भारत के किसान इतने तबाह क्यों है? इसलिए कि जब से अंग्रेजी शासन शुरू हुआ, यानी आज से डेढ़–दो सौ वर्ष पहले से विदेशी हुकूमत ने सदैव किसानों के हितों की उपेक्षा की और जमींदारों के हितों का समर्थन किया। अन्य प्रान्तों की बात जाने दीजिए। युक्त प्रान्त की ही दशा ले लीजिए, शायद ही किसी प्रांत के किसान इतने परेशान और दुखी हो। शायद ही किसी प्रान्त के किसानों को इतना कष्ट हो। शायद ही किसी प्रान्त में जमींदार ताल्लुकेदार इतनी मनमानी कर सकते हो और किसानों के कष्ट की कहानी इस डेढ़ सौ वर्ष के अंग्रेजी शासन में ज्यों की त्यों बनी हुई है। उन अभागों पर पुलिस का, जमींदार–ताल्लुकेदारों का ज्यों का त्यों जारी है।''[6]

यह कर्ज की समस्या आज भी किसानों की सबसे बड़ी समस्या बनकर रह गयी है, आये दिन जो किसानों में आत्महत्याएँ हो रही है उसके मूल में कर्ज की समस्या प्रमुख है। खेती घाटे का सौदा बनकर रह गयी है। खर्चा अधिक व फसलों के दाम कम होने के कारण किसान प्रतिदिन कर्ज में डूबता जा रहा है। सरकार किसानों के फसलों को कौड़ियों के भाव खरीद रही है, जिससे किसानों के परिवारों का जीवन–यापन कठिन हो गया है। दूसरी तरफ सरकार किसानों पर कर्जा वापस करने का दबाव डाल रही है और कर्जा न देने पर उनकी जमीने नीलाम की जा रही है।

प्रेमचंद ने यह बताया है कि किसानों का शोषण किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं होता, बल्कि उसके शोषण में कई लोग शामिल होते हैं– ''पटवारी भी उसको कर्ज में लपेटने में बड़ा भाग लेता है। सरकारी लगान यदि ज्यों की त्यों रही तो किसान कर्ज के बोझ से दबेगा ही। साहूकार कर्ज देकर किसान का खून चूस लेता है।''[7]

रोबर्ट रेडफील्ड लिखते हैं कि ''किसान को जमीन से आत्मीय लगाव होता है, उनके अनुसार व्यापार की तुलना में खेती करना ज्यादा अच्छा है और उत्पादन कर्म पुण्य कर्म है'' परन्तु सवाल यह उठता है कि जब किसान कर्ज के बोझ से इतना दबा है कि वह उठ नहीं सकता, तो खेती करना कैसे अच्छा होगा या फिर उत्पादन कर्म कैसे पुण्य कर्म होगा? इस पर विचार करने की जरूरत है।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2013 तक देश में दो लाख छियानबे हजार चार सौ अड़तिस किसान आत्महत्या कर चुके है। ये आँकड़े घट–बढ़ सकते हैं, परन्तु इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि आज के पूँजीवादी व्यवस्था में किसानों की दशा और खराब हई है। किसानों की दशा का हाल तो यह है कि अब वे किसानी

छोड़, सेवा क्षेत्र एवं उद्योग की तरफ बढ़ रहे हैं। पहले देश में 22.8 फीसदी सीमांत किसान थे, जो अब केवल 12 फीसदी ही रह गये हैं। अगर आने वाले समय में किसानों की यही दशा रही तो देश में बहुत गम्भीर संकट के संकेत दिख रहे हैं।

प्रेमचंद के समय में भी किसानों की दशा भी लगभग यही थी। देश को सुबह और शाम यदि भोजन नसीब होता है तो यह उन्हीं किसानों की मेहनत का प्रतिफल है। पूरा देश ही किसानों की मेहनत पर आश्रित है लेकिन उनकी दशा इतनी खराब है कि आज उनके सामने एक संकट सा खड़ा हो गया है और यह गम्भीर प्रश्न मुँह बाये खड़ा है कि किसान अब क्या करें?

प्रेमचंद ने किसानों की दशा की दुर्दशा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि ''भारत में अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वह हैं जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मुहताज हैं, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्हीं मजदूरों और किसानों के मेहनत का प्रतिफल है। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतें और कचहरियाँ, सब उन्हीं की कमाई के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, भरपेट अन्न को तरस रहे हैं, जाड़े–पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं।''[8]

सबसे बड़ा सवाल यह है कि जीवन के हर क्षेत्र में हमने बदलाव देखा और उसे स्वीकारा भी, लेकिन खेती में होने वाले बदलावों को स्वीकारना कभी हमारी प्राथमिकता में क्यों नहीं आता? हम खेतिहरों के सवाल पर क्यों चुप रहते हैं, यह बड़ा सवाल है?

बहुत पहले आस्ट्रेलिया जैसा देश, भारत से मुट्ठी भर दाल सैंपल के तौर पर ले गया और आज दलहन का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया है। लेकिन हम है जो आज भी खेती को पारंपरिकता से जोड़े रखने में गौरव महसूस करते हैं। विश्व (वैश्विक गाँव) ग्लोबल विलेज में बदल रहा है और इस बदलाव को कृषि में भी महसूस करने की जरूरत है।

किसानों की दशा क्यों खराब हो जाती है? इस पर प्रेमचंद ने अपने विचार के माध्यम से बताया है कि ''हमें तो उन्नति के लिए ऐसे विधानों की जरूरत है जो समाज में विप्लव किये बिना ही काम में लाया जा सकें। हम श्रेवियों में संग्राम नहीं चाहते। हाँ इतना अवश्य चाहते हैं कि सरकार और जमींदार दोनों ही इस बात को न भूल जाये कि किसान भी मनुष्य है, उसे भी रोटी और कपड़ा चाहिए, रहने को घर चाहिए, ...हमारे प्रान्त में अधिकतर किसान ऐसे हैं, जिनके पास तीन, चार एकड़ से ज्यादा भूमि नहीं है। बहुत बड़ा हिस्सा तो ऐसों का है जिनके पास

आधी जमीन भी नहीं है और जमाबंदियाँ जितनी ही छोटी होती हैं, उन पर खेती का खर्च उतना ही ज्यादा बैठता है।''[9]

किसानों के दशा में बदलाव कैसे लाया जायें! यह प्राथमिक सवाल है, इसके लिए जागरूक होना पड़ेगा। बिना जागरूक हुए तथा किसानों को जागरूक किये बिना हम किसानों के जीवन में सुधार नहीं ला सकते हैं। प्रेमचंद कहते हैं कि ''खेती की पैदावार बढ़ाने की ओर अभी तक प्रदर्शन और प्रचार के सीमा के अन्तर रहना ही उपयुक्त समझा है। अच्छे औजारों अच्छे बीजों, अच्छी खादों का केवल दिखा देना ही काफी नहीं है। सौ में दो किसान इसका फायदा उठा सकते हैं। जिनको भोजन का ठिकाना नहीं, जो नाक तक ऋण के नीचे दबा हुआ है, उससे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह नयी तरह के बीज या औजार या खाद्य खरीदेगा, उसे तो पुरानी लीक से जौ भर हटना भी दुस्साहस मालूम होता है। उसमें कोई परीक्षा करने की, किसी नयी परीक्षा का जोखिम उठाने की सामर्थ्य नहीं है।''[10]

किसानों का जीवन अति कष्टकारी था। प्रेमचंद उनके कष्टों से अन्दर तक आहत थे। वे जानते थे कि देश की रीढ़, ये किसान ही हैं, पर उनकी दशा तो इतनी खराब है, मानों भारत माता भी अपने मानस पुत्रों को देख कर आहत हो रही है।

भारतीय किसानों की इस समय जैसी दयनीय दशा है, जिसे कोई शब्दों में अंकित नहीं कर सकता। उनकी दुर्दशा वे स्वयं जानते हैं या उनका भगवान जानता है। जमींदार को समय पर मालगुजारी चाहिए, सरकार को समय पर लगान चाहिए खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न चाहिए, पहनने के लिए एक चीथड़ा चाहिए, सब कुछ पर एक ओर तुषार तथा अति–वृष्टि फसल को चौपट कर रही है, दूसरी ओर रोग, प्लेग, हैजा, शीतला, उसके नौजवानों को हरी–भरी तथा लहलहाती जवानी में उसी तरह दुनिया से उठाये लिए चली जा रही है, जिस तरह लहलहाता खेत अभी छः दिन पूर्व के पत्थर पाले से गल गया, गल्ला पैदा हो रहा है, पर भाव इतना मन्दा है कि कोई दो वक्त भोजन भी नहीं कर सकता। स्त्री के तन पर जो दो–चार गहने थे, वे साहूकार के पेट से बचकर, सरकार के मालगुजारी के पेट में चले गये। नन्हें बच्चे जो चीथड़ा ओढ़कर जाड़ा काटते थे, वही अब उनका पिता पहनकर अपने तन की लाज ढँक रहा है। माता के पास केवल इतना ही वस्त्र है, जीतने से वह घूँघट काढ़ सके, धोती चाहे ठेहुने तक ही क्यों न खसक आये।''[11] प्रेमचंद कहते हैं कि ''यह कलयुग है। कर्मयुग है। भाग्य का खेल है, किसान आया है दुनिया की मुसीबतों में पड़कर मर जाने के लिए।''[12]

दिन रात अथक मेहनत के बाद भी किसानों की दशा ज्यों की त्यों बनी

रहती है। हाड़–तोड़ मेहनत करने के पश्चात् बहुत कठिनाई से दो जून की रोटी उन्हें नसीब हो पाती है। तो अब सबसे बड़ा सवाल आता है कि आखिर किसानों की दशा में सुधार कैसे किया जाय, इस पर प्रेमचंद ने अपना विचार दिया है कि–

1. उचित मात्रा में लगान घटा दिया जावे। लगान–माफी या किस्तबन्दी का तरीका चलाया जावे। भूमि कर जमींदार की वास्तविक वसूली के हिसाब से लगाया जावे, न कि सबसे वसूली की संभावना पर।
2. नहर का रेट इतना घटा दिया जाये कि सबके लिए आबपाशी सस्ती पड़े। आजकल की तरह केवल अमीरों के काम लायक न हो।
3. जमींदारों को उनकी जिम्मेदारी सिखलानी चाहिए तथा जायज वसूली से अधिक वसूली करने की आज्ञा उन्हें नहीं देनी चाहिए।
4. किसानों का मौजूदा कर्जा जहाँ तक हो काट दिया जावे और कानून बनाकर सूद की दर तय कर दी जावे। साहूकारों को बहीखाता रखने के लिए बाध्य किया जावे तथा उन्हें केवल किसान को खरीद लेने के लिए 'रूपया' देने से रोका जावे।
5. सरकारी अफसरों को किसानों से नाजायज वसूली से रोका जावे। बड़े सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कमी की जावे और उससे रूपया बचाकर बहुत ही कम वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया जावे।''[13]

प्रेमचंद मानते हैं कि उपर्युक्त बिन्दुओं में यदि सुधार कर दिया जाये तो लगभग बहुत सारी समस्याएँ किसानों की अपने आप समाप्त हो जायेगी।

प्रेमचंद यह बताते हैं कि महाजनों की मनमानी ने गरीब किसानों के जीवन को नरक बना दिया है। वे अपना ब्याज ऐसे लागू करते है कि वर्षों ब्याज चुकता करने पर मूल ज्यों का त्यों रहता है। बेचारा किसान सूद और मूल के चक्कर में ऐसे पिसता है कि उसका कर्ज वह मेहमान बनकर रह जाता है जो एक बार आता है फिर जाने का नाम नहीं लेता है। ''ऐसे उदाहरण घर–घर मिलेंगे कि महाजन ने पचास रूपये देकर आसामी पर दो–सौ रूपये की डिग्री करायी और उसके पास जो कुछ भी था वह सब निलाम करा लिया। जब सभी जगह सूद का दर गिर गया है तो किसान से क्यों वही पुराना सूद लिया जाये। इस प्रान्त में हुण्डी का व्यवहार बहुत किया जाता है, उसमें सूद का दर तीस प्रति सैकड़े से भी अधिक पड़ता है। अतः लूट बन्द होनी चाहिए। अवश्य महाजनों का टोटा होगा। लेकिन चूहें भूखों मर जायेंगे इस भय से तो पटवारे नहीं खोल दी जातीं। महाजन को झक मारकर थोड़े सूद पर संतुष्ट होना पड़ेगा। वह अब थोड़े से रूपये उधार देकर किसान को पुश्तहापुश्त के लिए अपना गुलाम न बना सकेगा।''[14]

इस प्रकार किसान प्रेमचंद के साहित्य के केन्द्र में है। भारतीय किसानों को साहित्य के केंद्र में स्थापित करने का सर्वप्रथम प्रयास प्रेमचंद ने किया है। किसानी जीवन से प्रत्यक्ष स्वरूप से सरोकार न होते हुए भी कृषक जीवन की समस्याओं को जितनी गम्भीरता से प्रेमचंद ने प्रस्तुत किया है, सम्भवतः प्रेमचंद के बाद के किसी साहित्यकार ने किसानों की समस्याओं को लेकर वह गम्भीरता नहीं दिखायी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. हंस, अक्टूबर, 1951 से।
2. डॉ0 रामविलास शर्मा : प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, संस्करण, 2010, पृ0 177.
3. डॉ0 रामविलास शर्मा : प्रेमचंद के विचार, भाग– 1, प्रकाशन संस्थान, संस्करण, 2010, पृ0 469
4. वही, पृ0 470
5. प्रेमचंद के विचार, भाग– 1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृ0 471.
6. प्रेमचंद के विचार, भाग– 1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृ0 471.
7. वही, पृ0 483
8. प्रेमचंद के विचार, भाग– 1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृ0 474.
9. वही, पृ0 475
10. वही, पृ0 476
11. वही, पृ0 477
12. वही, पृ0 478
13. वही, पृ0 479
14. वही, पृ0 480